उसकी दानिशमंदी हमेशा मेरी सोच पर हावी रहती थी

उससे मेरी मुलाक़ात कोई बहुत पुरानी न थी, और न ही उसे मुकम्मल तौर पर 'नई' कहा जा सकता था। बस कुछ ही महीने पहले शनासाई का आग़ाज़ हुआ था। मगर यह इत्तेफ़ाक़ सिर्फ़ एक रस्मी ताआरुफ़ तक ही महदूद रहा, वो दोस्ती या किसी गहरी अजनबियत से अपनाइयत के रिश्ते में तब्दील न हो सकी। हाँ, कुछ दिनों तक गुफ़्तगू का सिलसिला चला, मिलने-बोलने और एक-दूसरे को सुनने के चंद मवाक़े (अवसर) मिले। मैंने इन मोहलतों में उसे समझने और उसकी शख़्सियत की गहराइयों को जानने की नाकाम कोशिशें ज़रूर कीं। मैं उसकी ज़िंदगी के हर सफ़र और हर लफ़्ज़ को पढ़ने की जुस्तजू में रहता।

सच तो यह है कि मैं मोहब्बत के जज़्बे का कोई बहुत बड़ा क़ायल न था, मगर उससे मिलने के बाद मेरे जीने का अंदाज़ ही बदल गया। मेरी तमाम तर तवज्जो (ध्यान) सिर्फ़ 'मोहब्बत' नाम के एक लफ़्ज़ पर मरकूज़ होकर रह गई। मैं हर लम्हा उसी के ख़्यालों के हिसार में रहने लगा। मैंने पहली बार प्यार को जिस्मानी भूख से अलग करके देखा, यानी एक मुक़द्दस (पवित्र) और पाकीज़ा जज़्बा, जो अब मेरे दिल की धड़कन बन चुका था।

धीरे-धीरे मुलाक़ातों ने अपना असर दिखाना शुरू किया। मैं उसके जादुई वजूद के ज़ेरे-असर आता चला गया। मगर उस लड़की के ख़्यालात में मुझे जो 'साफ़गोई' और 'पाकीज़गी' नज़र आती थी, उसने मुझे मुतासिर कर दिया। उसके जज़्बात में इंसानियत भी थी और मासूमियत का हुस्न भी। लेकिन उसके दिल के किसी गोशे (कोने) में छुपा हुआ एक अनकहा दर्द भी था, जिसे मैंने महसूस किया। हक़ीक़त तो ये है कि अच्छी गुफ़्तगू किसी कोशिश या इरादे के बग़ैर भी दो इंसानों को एक-दूसरे के क़रीब ले आती है। उसके बात करने का अंदाज़ इतना मुनफ़रिद था कि मैं नींद में भी उसकी आवाज़ की खनक महसूस करने लगा था। उसके जज़्बात इतने हसीन थे कि मेरे वजूद को मोम की तरह पिघला देते। मगर मैंने ग़ौर किया कि वो कभी अपनी हदों से बाहर नहीं निकली,उसकी दानिशमंदी (अक़्लमंदी) हमेशा मेरी सोच पर हावी रहती।

एक बार उसने पूछा, 'क्या ख़्वाब देखना बुरी बात है?' मैंने कहा, 'नहीं, बिलकुल नहीं,मगर किसी को पाकर खो देना आसान होता है।' यह कहते-कहते उसकी आँखें छलक आईं, जैसे आसमानों में खो गई हों। उसकी ये हालत देखकर मेरा दिल तड़प उठा, लेकिन मेरी ज़बान जुम्बिश (हलचल) न कर सकी। लफ़्ज़ जैसे मेरा साथ छोड़ गए थे, उस वक़्त,या शायद मेरे अहसास पर किसी ने पहरा बिठा दिया था। मैं बहुत कुछ कहना चाहता था, मेरी आँखें उसे मुसलसल तक रही थीं। मेरे वजूद ने जब ज़ब्त से काम लिया, तो बड़ी जद्दोजहद के बाद ज़बान से बस उसका नाम ही निकल सका।

उस लम्हे मेरे दिल में जज़्बात का एक तूफ़ान बरपा था। जी चाहता था कि उससे जी भरकर बातें करूँ, उसे बता दूँ कि तुम मेरी ज़िन्दगी का मेहर (केंद्र) बन गई हो। लेकिन वक़्त की नज़ाकत ने मुझे ख़ामोशी का लिबास ओढ़ा दिया था। मैं जानता था कि वो शादी-शुदा है, और अपने सुहाग की अमानत थी। इन ख़यालातों के बाद भी वो मेरे दिल से निकलने का नाम ही न ले रही थी। मैं उसके दर्द की गहराइयों में उतरना चाहता था, उस दीवार को गिराकर साफ़ बात करना चाहता था। लेकिन तभी मेरे दिल से सदा आई– 'तुम ग़लत सोच रहे हो।

'

तभी मोबाइल पर मैसेज की टोन गूँजी। मैंने बे-मन से फ़ोन देखा, तो उसी का पैग़ाम था। लिखा था 'सुनिए, कल मैं अपने अम्मी-पापा के घर जा रही हूँ, क्योंकि रक्षाबंधन है। आप जब चाहें वहां आ सकते हैं, अगर आप न आए तो मैं नाराज़ हो जाऊंगी। '

मेरे दिल में फ़िर क़शमक़श शुरू हुई, क्योंकि रक्षाबंधन में अब कोई ज़्यादा दिन न बचे थे। परसों ही तो वो दिन था। मेरा दिल हिचकोले खाने लगा। आख़िरकार वो दिन आ ही गया। मैं खुद को संवार कर, आईने के सामने खड़ा होकर तैयार हुआ और उसके वालिद (पिता) के घर पहुँच गया। वहां मेरा जाना पहली बार ही हुआ था। जैसे ही मैं वहां पहुँचा, मुझे लगा कि सारा परिवार मेरा ही इस्तक़बाल करने खड़ा है। थोड़ी देर में मैं भी सबके बीच बैठा था। इधर-उधर की बातों के बाद सबने मिलकर खाना खाया और आपस में ताआरुफ़ हुआ।

जैसे ही मैं खाना खाकर वापस कमरे में आकर बैठा, मैंने देखा कि वहां बहुत सी तस्वीरें लगी थीं। उन्हें देखकर मैं एक पल को घबरा गया, जैसे मेरी ही तस्वीरें दीवारों पर आवेज़ां (लगी) हों। हूबहू मेरी ही शक्ल! लेकिन मेरी एक तस्वीर पर 'स्वर्गीय' (मरहूम) लिखा था। मुझे लगा जैसे मैं मर चुका हूँ। ग़ज़ीनन वो तस्वीर मेरी नहीं थी, मगर मुझ जैसी ज़रूर थी।

तभी उसकी आवाज़ आई, जो सिसकियों में डूबी थी। उसने कहा, 'मैंने जब पहली बार आपको देखा था, तो मुझे लगा मेरे भैया वापस आ गए हैं।' उसकी आवाज़ ऐसी थी जैसे कोई अपना गला दबाने की कोशिश कर रहा हो। उसकी आँखें बातें करते-करते भीग गई थीं। सारा परिवार ख़ामोश था, लेकिन कहीं ख़ुशियों की आहट भी थी। इतने में एक बेहद खूबसूरत नन्ही सी बच्ची हाथों में पूजा की थाली लेकर आई और फ़िर उसने कहा 'आओ भैया, बैठ जाइये। मैं आपको राखी बांधना चाहती हूँ।

मेरी तरफ़ हाथ खुद-ब-खुद बढ़ गया और राखी का वो मुक़द्दस धागा मेरे हाथों पर सज गया। मुझे लग रहा था कि ये प्यार का वो कौन सा रंग था जिसे मैं देख न पाया था?क्या मैं वाक़ई अंधा ही था। मगर वो बहुत खुश थी,

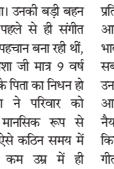

उसका भाई, जो कुछ दिनों पहले इस दुनिया से कूच कर गया था, जैसे आज वापस लौट आया था।

डॉ. मुश्ताक़ अहमद शाह सहज
हरदा मध्य प्रदेश

स्वर-निर्वाण की चिरंतन यात्री: आशा भोसले

इतिहास की कोख से जब कोई युग-चेतना जन्म लेती है, तो वह काल की सीमाओं को अपनी मुट्ठी में भींच लेने का सामर्थ्य रखती है। भारतीय संगीत के मानचित्र पर आशा भोसले मात्र एक नाम नहीं, बल्कि एक ऐसी स्वर-क्रांति है जिसने सात दशकों तक मनुष्य के हृदय की धड़कनों को अपनी लय से संचालित किया है। संगीत की दुनिया में जहाँ आवाज़ें अक्सर उम्र के साथ अपनी चमक खो देती हैं, वहाँ आशा जी का स्वर एक ऐसी 'पारसमणि' सिद्ध हुआ है, जिसने जिस विधा को छुआ, उसे स्वर्ण बना दिया। आज जब हम उनके सांगीतिक अवदान और जीवन के अंतिम सत्य - 'प्रयाण' पर विचार करते हैं, तो हमें बोध होता है कि उनकी आवाज़ वास्तव में उस अनंत की ओर गमन करने वाली एक जादुई रागिनी है।

8 सितंबर, 1933 को महाराष्ट्र के सांगली में जन्मी आशा जी का नाता उस 'दीनानाथ मंगेशकर' परंपरा से है, जहाँ संगीत सांसों में बसता था। पिता की मृत्यु के बाद, मात्र 10 वर्ष की आयु में उन्होंने अपनी बड़ी बहन लता जी के साथ परिवार के भरण-पोषण के लिए गायन की दुनिया में कठिन कदम रखा। उनकी पहली फिल्म 'माझा बाल' (1943) थी। वैयक्तिक जीवन में मात्र 16 वर्ष की आयु में घर की रजामंदी के विरुद्ध गणपतराव भोसले से विवाह और फिर संघर्षमय गृहस्थी ने उन्हें समय से पूर्व परिपक्व कर दिया। इस व्यक्तिगत पीड़ा और जीवन के उतार-चढ़ावों ने उनकी आवाज़ को वह 'खुरदरापन' और 'अनुभव' दिया, जो मखमल की कोमलता से कहीं अधिक प्रभावी और मानवीय सिद्ध हुआ।

आशा जी की प्रतिभा का लोहा हर महान संगीतकार ने माना और उनकी कार्यशैली से जुड़े किस्से आज भी सांगीतिक गलियारों में किंवदंती हैं। ओ.पी. नैय्यर ने एक बार स्पष्ट स्वीकारोक्ति की थी कि 'आशा की आवाज़ में जो खनक और भावुकता है, वह किसी अन्य कलाकार में मिलना दुर्लभ है।' संगीत सम्राट आर.डी. बर्मन (पंचम दा) के साथ उनका तालमेल इतना सटीक था कि 'पिया तू अब तो आजा' की रिकॉर्डिंग के दौरान उन्होंने जो विशिष्ट 'साँसों की लय' विकसित की, उसने पार्श्वगायन के व्याकरण को ही बदल दिया।

महान संगीतकार खय्याम का मानना था कि आशा जी एक ऐसी साधिका हैं जो शास्त्रीय जटिलताओं को सुगम संगीत की तरलता में पिरोना जानती हैं, जैसा उन्होंने 'उमराव जान' की ग़ज़लों में कर दिखाया। वहीं, ए.आर. रहमान ने उन्हें 'निरंतर प्रेरणा का वह स्रोत' कहा है, जो हर नई पीढ़ी के लिए संगीत का एक नया पाठ प्रस्तुत करती हैं। एक प्रसिद्ध किस्सा यह भी है कि शंकर-जयकिशन के एक गाने के लिए उन्होंने लगातार 14 घंटे रिहर्सल की थी, जो उनके 'परफेक्शन' के प्रति जुनून को दर्शाता है।

आशा भोसले के स्वर का विस्तार एक ऐसे ब्रह्मांड की भाँति है जहाँ हर रस, हर विधा और हर मानवीय भाव के लिए एक विशिष्ट और गौरवशाली स्थान सुरक्षित है। उनके गायन की यह विविधता पूर्ण वाक्यों में उनके सांगीतिक साम्राज्य की विशालता को प्रकट करती है। जहाँ एक ओर 'दम मारो दम' और 'ये मेरा दिल' जैसे गीतों ने आधुनिकता और विद्रोह की अग्नि को स्वर दिया, वहीं दूसरी ओर 'दिल चीज़ क्या है' और 'इन आँखों की मस्ती के' जैसी कालजयी ग़ज़लों ने उन्हें गायकी के शास्त्रीय शिखर पर प्रतिष्ठित किया। गुलज़ार के गहन शब्दों के साथ 'मेरा कुछ सामान' और 'खाली हाथ शाम आई है' जैसे गीतों ने श्रोता को जीवन की नश्वरता और स्मृतियों के प्रयाण' से साक्षात्कार कराया। मराठी लोक संगीत की लावणी से लेकर 'तौरे मन दर्पण कहलाए' जैसे भजनों तक, उनकी आवाज़ ने यह सिद्ध किया कि वह जितनी क्लबों के कोलाहल में प्रभावी है, उतनी ही देवालयों की गहन शांति और दार्शनिकता में भी गहरी है।

उनकी सात दशकों की अनवरत साधना को विश्व स्तर पर सराहा गया और उन्हें वे तमाम सम्मान प्राप्त हुए जो किसी कलाकार के लिए गौरव की पराकाष्ठा होते हैं। उन्हें फ़िल्म 'उमराव जान' (1981) और 'इजाज़त' (1986) के लिए सर्वश्रेष्ठ पार्श्वगायिका के 'राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। कला के प्रति उनके इसी अटूट समर्पण को देखते हुए भारत सरकार ने उन्हें सन् 2000 में सिनेमा के सर्वोच्च सम्मान 'दादा साहब फाल्के पुरस्कार' और 2008 में देश के दूसरे सबसे बड़े नागरिक सम्मान 'पद्म विभूषण' से अलंकृत किया। इतना ही नहीं, उनकी सांगीतिक उत्पादकता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि गिनीज वर्ल्ड रिकॉर्ड्स ने उन्हें संगीत इतिहास में सबसे अधिक स्टूडियो रिकॉर्डिंग (हजारों गीत) करने वाली गायिका के रूप में आधिकारिक मान्यता प्रदान की है।

90 वर्ष की आयु पार करने के बाद भी आशा भोसले की आवाज़ की खनक यह संदेश देती है कि गला केवल एक माध्यम है, गाती तो वास्तव में 'आत्मा' है। भारतीय दर्शन के अनुसार 'प्रयाण' अंत नहीं, बल्कि चेतना का विस्तार है। आशा जी का संगीत इसी विस्तार की गूँज है। श्रद्धांजलि स्वरूप यदि उनके व्यक्तित्व को एक शब्द में पिरोया जाए, तो वह है - 'अपराजिता'।

उनका 'महाप्रयाण' की ओर बढ़ता हर सुर हमें बोध कराता है कि जीवन नश्वर है, किंतु कला अमर है। वे भारतीय संस्कृति की वह 'अंतिम आशा' हैं, जो हमें विश्वास दिलाती हैं कि जब तक प्रकृति में कंपन है, तब तक संगीत जीवित है। नमन है उस महाप्रयण स्वर को, जिसने हमें 'प्रयाण' के भय से मुक्त कर उसे एक मधुर स्मृतियों के मेले में बदल दिया। भारतीय संगीत का इतिहास तब तक पूर्ण नहीं होगा, जब तक उसमें आशा की इस अमर प्रतिध्वनि का उल्लेख स्वर्ण अक्षरों में नहीं किया जाएगा।

अजय कुमार झा
'तिरहुतिया' शिक्षक एवं साहित्यकार

गिरती राजनीतिक भाषा एवं असंवेदनशील बयानबाजी

भारतीय लोकतंत्र केवल एक शासन प्रणाली ही नहीं है बल्कि एक जीवंत परंपरा है, जिसमें संवाद, सहिष्णुता, सम्मान और विचारों का आदान-प्रदान उसकी आत्मा माने जाते हैं, लेकिन वर्तमान समय में जिस प्रकार राजनीतिक भाषा का स्तर गिरता जा रहा है, वह न केवल लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए खतरा है बल्कि समाज की संरचना के लिए भी एक गंभीर चुनौती बनता जा रहा है।

हाल ही में बांदीकुई,दौसा, राजस्थान में आयोजित महात्मा ज्योतिबा राव फुले जयंती के राज्य स्तरीय कार्यक्रम के अवसर पर जो घटनाक्रम सामने आया, उसने इस संकट को और अधिक स्पष्ट कर दिया, जहाँ एक ओर विकास योजनाओं की घोषणाएँ हुईं, वहीं दूसरी ओर ऐसे बयान सामने आए जिन्होंने राजनीतिक मर्यादा, सामाजिक संवेदनशीलता और नैतिकता–तीनों को कठघरे में खड़ा कर दिया है।इस मंच पर भजनलाल शर्मा ने किसानों को लेकर यह टिप्पणी की कि किसान वर्ष में केवल 25 से 30 दिन ही काम करता है, यह कथन न केवल वास्तविकता से परे है बल्कि किसान वर्ग के प्रति शासन की असंवेदनशीलता को भी दर्शाता है। भारतीय किसान जो कि देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है, केवल खेतों में श्रम करने वाला व्यक्ति नहीं है बल्कि वह मौसम, बाजार, कर्ज, संसाधनों की कमी और प्राकृतिक आपदाओं से निरंतर जूझने वाला संघर्षशील नागरिक है। उसके जीवन का कोई निश्चित कार्यकाल नहीं होता, वह वर्षभर अपने अस्तित्व और परिवार के भविष्य के लिए संघर्ष करता है, ऐसे में यदि उसके श्रम को इस प्रकार सीमित कर दिया जाए तो यह उसके मेहनतकश आत्मसम्मान को आहत करने जैसा है।

इसी मंच पर से वर्तमान विधायक भागचंद टाकड़ा द्वारा पूर्व विधायक गजराज खटाना पर की गई व्यक्तिगत टिप्पणी ने इस स्थिति को और गंभीर बना दिया, यदि यह सत्य है कि पूर्व में गजराज खटाना की तत्कालीन जिला प्रमुख पत्नी ने भी अपने किसी भाषण में पानी न लाने पर अपनी पति को तलाक देने जैसी बात कही थी, तो यह भी उतना ही दुर्भाग्यपूर्ण है क्योंकि दोनों ही पक्षों में व्यक्तिगत रिश्तों को एक प्रतीक या उपकरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है, और जब वर्तमान विधायक भागचंद टाकड़ा ने इस कथित बयान को दोहराते हुए अपने विवाह और रंग-रूप को लेकर टिप्पणी की, तो यह राजनीति के उस निम्न स्तर को दर्शाता है जहाँ गंभीर मुद्दे हास्य और व्यंग्य के नाम पर समाप्त कर दिए जाते हैं। यह केवल भाषा की ही गिरावट नहीं है बल्कि सार्वजनिक पद को धारित करने वाले जनप्रतिनिधि की सोच की गिरावट भी है। यदि हम इस प्रवृत्ति को व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ में देखें तो यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में सदियों से एक ऐसी मानसिकता रही है जिसमें महिलाओं को पुरुषों की महत्वाकांक्षाओं के बीच एक साधन के रूप में देखा गया।

युधिष्ठिर द्वारा जुआ के खेल में द्रौपदी को दांव पर लगाना इसका सबसे बड़ा उदाहरण है, लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण भी हैं जहाँ महिलाओं के सम्मान और गरिमा की रक्षा के लिए संघर्ष किया गया। इसी प्रकार राजनीति में भी हमें दो प्रकार की परंपराएँ देखने को मिलती हैं– एक वह जिसमें सम्मान और मर्यादा है, और दूसरी वह जिसमें अपमान और कटाक्ष है। यदि हम सकारात्मक उदाहरणों की बात करें तो अटल बिहारी वाजपेयी का नाम सबसे पहले आता है, जिन्होंने अपने विरोधियों के प्रति भी सम्मानजनक भाषा का प्रयोग किया, 1971 के युद्ध के बाद इंदिरा गांधी को 'दुर्गा' कहना इस बात का प्रमाण है कि राजनीति में विरोध के बावजूद सम्मान बनाए रखा जा सकता है। लाल बहादुर शास्त्री ने भी 'जय जवान जय किसान' का नारा देकर किसानों के महत्व को रेखांकित किया था। यह नारा आज भी भारतीय राजनीति में सम्मान का प्रतीक माना जाता है, जवाहरलाल नेहरू और राम मनोहर लोहिया के बीच वैचारिक मतभेद थे लेकिन उनकी भाषा में मर्यादा और संवाद में शालीनता बनी रहती थी। जयप्रकाश नारायण ने सत्ता के खिलाफ संघर्ष किया लेकिन उनकी भाषा में कभी कटुता नहीं आई। करुणानिधि और एम जी रामचंद्रन के बीच भी तीखा राजनीतिक संघर्ष था,लेकिन उन्होंने भी कई अवसरों पर एक-दूसरे के योगदान को स्वीकार किया। यह सभी उदाहरण इस बात को सिद्ध करते हैं कि राजनीति में विरोध और सम्मान साथ-साथ चल सकते हैं, लेकिन आज की राजनीति में यह संतुलन लगातार समाप्त होता जा रहा है। अब स्थिति यह है कि विपक्षी दल एक-दूसरे के अच्छे कार्यों की भी सराहना करने से बचते हैं, बल्कि उन्हें नकारने का प्रयास करते हैं, इससे राजनीति का स्तर गिरता है और जनता के बीच नकारात्मकता फैलती है।

बांदीकुई की घटना इसी व्यापक प्रवृत्ति का एक स्थानीय उदाहरण है जहाँ पानी जैसी गंभीर समस्या और किसानों जैसे महत्वपूर्ण वर्ग पर विचार करने के बजाय बयानबाजी और कटाक्ष केंद्र में आ गए, इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत रिश्तों को इस प्रकार राजनीतिक विमर्श में घसीटना यह दर्शाता है कि हम अब भी लैंगिक समानता के प्रश्न पर गंभीर नहीं हैं, एक ओर हम महिला सशक्तिकरण की बात करते हैं और दूसरी ओर उन्हें इस प्रकार के बयानबाजी का विषय बनाते हैं। यह दोहरा मापदंड हमारे समाज की विडंबना को उजागर करता है। इसी संदर्भ में ज्योतिराव फुले के विचार अत्यंत प्रासंगिक हो जाते हैं, उन्होंने अंधविश्वास, पाखंड और सामाजिक असमानताओं का विरोध किया और शिक्षा तथा समानता पर बल दिया, लेकिन आज विडंबना यह है कि उनके नाम पर ही कई स्थानों पर दिखावटी आयोजन और पाखंडपूर्ण गतिविधियाँ होती हैं। यह उस मूल विचारधारा के साथ अन्याय है जिसे उन्होंने स्थापित करने का प्रयास किया था। यदि हम उनके आदर्शों को सही मायनों में अपनाएँ तो हमें समाज के कमजोर वर्गों–महिलाओं, किसानों और वंचितों–के सम्मान और अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए। अंततः यह कहा जा सकता है कि बांदीकुई की यह घटना केवल एक स्थानीय विवाद नहीं है बल्कि यह हमारे लोकतंत्र के सामने खड़े एक बड़े संकट का प्रतीक है। राजनीतिक विमर्श में इस प्रकार की गिरावट हमें चेतावनी देती है कि यदि समय रहते हमने राजनीति की भाषा और व्यवहार को नहीं सुधारा तो इसका प्रभाव समाज की संरचना पर भी नकारात्मक पड़ेगा।

हमें वर्तमान में एक ऐसी राजनीति की आवश्यकता है जिसमें संवाद हो, सम्मान हो और संवेदनशीलता हो, जहाँ विरोध हो लेकिन वह वैचारिक हो, जहाँ आलोचना हो लेकिन वह मर्यादित हो, और जहाँ नेतृत्व हो लेकिन वह समाज के प्रत्येक वर्ग के सम्मान की रक्षा करने वाला हो, तभी हम एक सशक्त, स्वस्थ और जीवंत लोकतंत्र की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं, अन्यथा इस प्रकार की घटनाएँ हमें बार-बार यह याद दिलाती रहेंगी कि हमने अपनी राजनीतिक संस्कृति के मूल्यों को कहीं पीछे छोड़ दिया है।

डॉ. राजेंद्र यादव
आजाद
मोबाइल
9414 27 1288

स्वर साम्राज्ञी आशा भोसले : जन्म से मृत्यु तक की यात्रा

भारतीय संगीत जगत में यदि किसी स्वर ने अपनी मधुरता, विविधता और चंचलता से श्रोताओं के दिलों पर अमिट छाप छोड़ी है, तो वह नाम है आशा भोसले। उनका जीवन केवल एक महान गायिका की सफलता की कहानी नहीं, बल्कि संघर्ष, समर्पण और निरंतर साधना का अद्भुत उदाहरण भी है। 12 अप्रैल 2026 को उनके निधन के साथ भारतीय संगीत का एक स्वर्णिम अध्याय मानो थम सा गया और पूरे देश में शोक की लहर दौड़ गई। आशा भोसले का जन्म 8 सितंबर 1933 को महाराष्ट्र के सांगली में हुआ। उनके पिता दीनानाथ मंगेशकर प्रसिद्ध गायक और रंगमंच कलाकार थे। घर का वातावरण पूरी तरह संगीत से ओत-प्रोत था, जिसके कारण बचपन से ही उनके मन में सुरों के प्रति स्वाभाविक लगाव विकसित हो गया। उनकी बड़ी बहन लता मंगेशकर पहले से ही संगीत जगत में अपनी पहचान बना रही थीं, लेकिन जब आशा जी मात्र 9 वर्ष की थीं, तब उनके पिता का निधन हो गया।इस घटना ने परिवार को आर्थिक और मानसिक रूप से झकझोर दिया। ऐसे कठिन समय में आशा जी ने कम उम्र में ही जिम्मेदारियों को समझा और गायन को अपना सहारा बना लिया। उन्होंने अपने करियर की शुरुआत मराठी फिल्मों में गीत गाकर की, और धीरे-धीरे हिंदी सिनेमा की ओर कदम बढ़ाया। शुरुआती दौर आसान नहीं था। उन्हें छोटे बजट की फिल्मों में सीमित अवसर मिलते थे, और उस समय लता मंगेशकर का वर्चस्व होने के कारण अपनी अलग पहचान बनाना चुनौतीपूर्ण था। फिर भी आशा भोसले ने हार नहीं मानी। उन्होंने हर तरह के गीत गाकर अपनी प्रतिभा का विस्तार किया। उनकी आवाज़ में जो चपलता, ऊर्जा और भावों की विविधता थी, वही उनकी सबसे बड़ी पहचान बनती चली गई। उनके जीवन में निर्णायक मोड़ तब आया जब उन्होंने संगीतकार ओ. पी. नैयर के साथ काम करना शुरू किया। इस जोड़ी ने कई सुपरहिट गीत दिए और आशा जी को एक नई पहचान मिली। इसके बाद उनका साथ आर. डी. बर्मन के साथ जुड़ा, जो आगे चलकर उनके जीवनसाथी भी बने। इस रचनात्मक साझेदारी ने हिंदी फिल्म संगीत को एक नया आयाम दिया। 'दम मारो दम' और 'पिया तू अब तो आजा' जैसे गीत आज भी संगीत प्रेमियों के दिलों में जीवित हैं।

आशा भोसले की सबसे बड़ी विशेषता उनकी बहुमुखी प्रतिभा थी। उन्होंने केवल हिंदी ही नहीं, बल्कि मराठी, बंगाली, गुजराती, पंजाबी, तमिल, तेलुगु सहित अनेक भाषाओं में हजारों गीत गाए। ग़ज़ल, भजन, पॉप, शास्त्रीय और फिल्मी संगीत हर शैली में उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी। यही कारण है कि वे हर पीढ़ी के श्रोताओं की पसंद बनी रहीं और समय के साथ उनकी लोकप्रियता कभी कम नहीं हुई। उनका निजी जीवन भी उतार-चढ़ाव से भरा रहा। कम उम्र में हुआ पहला विवाह सफल नहीं रहा, लेकिन बाद में आर. डी. बर्मन के साथ उनका विवाह उनके जीवन का एक सुखद और संतुलित अध्याय साबित हुआ। दोनों के बीच संगीत का गहरा रिश्ता था, जिसने उनके व्यक्तिगत और पेशेवर जीवन को नई दिशा दी।

आशा भोसले को उनके अद्वितीय योगदान के लिए अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। उन्हें कई फिल्मफेयर पुरस्कार प्राप्त हुए और बाद में फिल्मफेयर लाइफटाइम अचीवमेंट अवार्ड से भी नवाजा गया। भारत सरकार ने उन्हें पद्म विभूषण से सम्मानित किया, जो देश का दूसरा सर्वोच्च नागरिक सम्मान है। इसके साथ ही उन्हें दादा साहेब फाल्के पुरस्कार भी मिला, जो भारतीय सिनेमा का सर्वोच्च सम्मान माना जाता है। अपने लंबे करियर में आशा भोसले ने हजारों गीत गाकर भारतीय संगीत को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया। उनकी आवाज़ में भावनाओं की गहराई, चंचलता और अद्भुत मिठास थी, जिसने उन्हें अन्य गायिकाओं से अलग और विशिष्ट बनाया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि सच्चा संगीत केवल सुरों का मेल नहीं, बल्कि आत्मा की अभिव्यक्ति है, जो सीधे दिल तक पहुँचती है। 12 अप्रैल 2026 को तबीयत बिगड़ने के बाद उन्हें मुंबई के ब्रीच कैंडी अस्पताल में भर्ती कराया गया, जहाँ उन्होंने अंतिम सांस ली। उनके निधन की खबर से पूरे देश में शोक की लहर दौड़ गई। संगीत प्रेमियों, कलाकारों और आम जनता ने नम आँखों से उन्हें श्रद्धांजलि दी। आज भले ही उनकी आवाज़ खामोश हो गई हो, लेकिन उनके गीत, उनकी धुनें और उनकी विरासत सदैव अमर रहेंगी। उन्होंने केवल संगीत को समृद्ध नहीं किया, बल्कि करोड़ों लोगों के जीवन में भावनाओं के रंग भरे। उनका जीवन हमें यह सिखाता है कि संघर्ष चाहे कितना भी कठिन क्यों न हो, यदि मन में लगन और समर्पण हो, तो सफलता निश्चित है।

आशा भोसले केवल एक महान गायिका नहीं थीं, बल्कि भारतीय संगीत की आत्मा थीं। उनका स्वर सदैव गूंजता रहेगा और आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करता रहेगा।

रूपेश कुमार
आईडिया बिल्डर,युवा साहित्यकार
चैनपुर, सीवान, बिहार